समरहिल

ए. एस. नील

हिन्दी अनुवाद

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

एकलव्य का प्रकाशन

(1960)

समरहिल

Summerhill

लेखक : ए. एस. नील

हिन्दी अनुवाद : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

कार्टून : हैरी हैरिंग

ए. एस. नील की बेटी ज़ोई रेडहेड से प्राप्त अनुमति के अन्तर्गत प्रकाशित
अगस्त 2004 / 2000 प्रतियाँ
80 gsm मेपलिथो एवं 300 gsm आर्टकार्ड (कवर) पर प्रकाशित
मूल्य : 110.00 रुपए
ISBN 81-87171-60-x

प्रकाशक : एकलव्य
ई-7/453 एच.आई.जी., अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462016 म.प्र.
फोन : (0755) 246 3380
फैक्स : (0755) 246 1703
ई मेल : eklavyamp@mantrafreenet.com

मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, भोपाल, म.प्र. फोन 255 0291, 255 5442

हैरल्ड हार्ट के प्रति

आशा है आपको भी इस पुस्तक के लिए उतना ही श्रेय या अपयश मिलेगा, जितना मुझे। आप इस पुस्तक के प्रकाशक मात्र नहीं रहे, बल्कि आप एक ऐसे व्यक्ति रहे जिसने समरहिल के प्रयोग में सदा विश्वास किया है।

आपके धीरज ने मुझे हमेशा आश्चर्यचकित किया। मेरी पिछली चारों पुस्तकों में से हज़ारों शब्दों को छाँटना, उन्हें सम्पादित कर नई व ताज़ा सामग्री के साथ पिरोना आसान काम नहीं था।

आप जब-जब समरहिल आए आपने यही जताया कि आपका मुख्य सरोकार यही है कि आप अमरीका को उस काम के बारे में बताना चाहते हैं जो आपने देखा, पसन्द किया और जिसमें आपकी आस्था बनी। ऐसा करते समय आप समरहिल का ही हिस्सा थे। आपने सभी आधारभूत बातों पर गौर किया और जो महत्वपूर्ण नहीं थीं उन्हें नज़रअन्दाज़ किया। उदाहरण के लिए हमारे प्रसन्नचित्त बच्चों की अस्तव्यस्तता।

मैं आपको समरहिल का मानद छात्र घोषित करता हूँ।

ए. एस. नील
समरहिल, लाइस्टन, सफोल्क, इंग्लैण्ड

हैरल्ड हार्ट : समरहिल के पहले संस्करण के प्रकाशक

प्रकाशक की ओर से.....

यह किताब जितनी बच्चों के बारे में है उतनी ही बड़ों के बारे में भी है। यह किसी पाठ्यक्रम की शिक्षा के बारे में न होकर एक अलग ढंग का अभिभावक बनने की कहानी है।

कई वर्षों तक सामान्य स्कूलों में पढ़ाने के बाद ए. एस. नील और उनकी पहली पत्नी फ्रॉ न्यूस्टैटर ने एक ऐसा स्कूल बनाने का फैसला किया जो मनोविश्लेषण की खोजों को मनुष्य की एक पीढ़ी को पालने-पोसने में लागू करके दिखा सके। एक ऐसा स्कूल जिसमें बच्चे जैसे हैं वैसे ही होकर जी सकें। 1921 में जर्मनी में शुरू होने के बाद समरहिल नाम का यह स्कूल अंततः लन्दन के पास एक गाँव में सन् 1923 में स्थापित हुआ और आज तक बना हुआ है। इसमें 5 से 15 वर्ष की आयु के लगभग 40-50 बच्चे हर साल रहते थे। इन दिनों इनकी संख्या 60-70 के करीब रहती है।

यह पूरी तरह से आवासी स्कूल रहा है औऱ इसका मूल मंत्र है - स्वतंत्रता। स्वतंत्रता पर दो तरह के अंकुश भी हैं - एक, बच्चों की सुरक्षा के लिए ज़रूरी समझे गए नियम और दो, स्कूल की आमसभा द्वारा तय किए गए नियम। स्कूल में लागू अनुशासन वे हैं जो सब मिलकर बनाते हैं, मिलकर लागू करते हैं, चाहें तो उन्हें बदलते भी हैं।

समरहिल स्कूल के चालीस वर्षों के अनुभव को नील ने इस किताब में प्रस्तुत किया है। स्वशासन, शिष्टाचार, सहशिक्षा, काम, खेल, नाटक, संगीत, धर्म, सेक्स, भय, हीनभावना, कल्पनालोक, झूठ, आज्ञापालन, सज़ा, टट्टी-पेशाब का प्रशिक्षण, खिलौने, पैसा, गालियाँ बकना, यौन निर्देश, समलैंगिकता, हस्तमैथुन, चोरी ऐसी अनेकों बातें हैं जो बच्चों के अभिभावकों को दिन-रात परेशान रखती हैं। इस पुस्तक के माध्यम से नील इन सबके सम्बंध में अपना नज़रिया और बच्चों के साथ हुए वास्तविक अनुभवों को तमाम अभिभावकों के सामने रखते हैं।

समरहिल से निकले हुए आत्मसंचालित, स्वनिर्देशित बच्चों के आगे के जीवन का ब्यौरा देते हुए नील यह प्रमाणित करते हैं कि आज़ादी और स्वनिर्देशन से किसी मनुष्य का कभी नुकसान नहीं हुआ है।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषक सिगमंड फ्रॉयड के सिद्धान्तों से प्रभावित होते हुए नील बार-बार यह व्याख्या करते हैं कि बचपन की स्वाभाविक रुचियों के लगातार दमन के कारण मनुष्य में कुंठाएँ और नफरतें बसती हैं, जो संसार की अमानवीयता और क्रूरता का कारण बनती हैं। हालाँकि आज मनोविज्ञान की दुनिया में फ्रॉयड की इन प्रारम्भिक मान्यताओं से आगे बढ़ते हुए यह स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक-राजनैतिक प्रक्रियाओं के विकास का अपना सिलसिला भी होता है और बाहर की यह सारी दुनिया मनुष्य के अन्दर की इच्छाओं, खासकर यौन इच्छाओं, के दमन का प्रतिफल मात्र नहीं है; फिर भी फ्रॉयड की कई धारणाएँ आज भी मनोविज्ञान में मूल्यवान मानी जाती हैं। जैसे, अचेतन विचारों व भावों का मनुष्य के काम पर असर पड़ता है, बचपन के अनुभवों का आगे जाकर व्यक्तित्व के निर्माण में असर पड़ता है, बचपन की यौन इच्छाओं से चिन्ताएँ और असुरक्षा के भाव पैदा होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में समरहिल का यह दस्तावेज़ अपना महत्व व आकर्षण बनाए रखता है। 1960 में इस किताब के संस्करण के लिए एरिक फ्रॉम द्वारा लिखा आमुख, यहाँ दिया जा रहा है। यह समरहिल के मौलिक महत्व को विस्तार से प्रस्तुत करता है।

समरहिल स्कूल के दर्शन और व्यवहार ने यूरोप और अमेरिका में कई मिलते जुलते प्रयोगों को प्रेरित किया। 1973 में अपनी मृत्यु तक नील इस स्कूल को संचालित करते रहे। उनके बाद उनकी दूसरी पत्नी एना ने 1985 तक इसका प्रभार सम्भाला। 1985 से वर्तमान तक उनकी बेटी ज़ोई इस स्कूल का संचालन कर रही हैं। अपनी शुरुआत से अब तक यह स्कूल मूल रूप से अपरिवर्तित रहा है। नील द्वारा लिखी यह किताब *समरहिल* संयुक्त राज्य अमेरिका के विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान और शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल की जाती रही। इस किताब के असर से कई अभिभावक, इंग्लैण्ड आकर अपने बच्चों को स्कूल में दाखिला दिलाते रहे। वर्तमान में स्कूल के 65-70 बच्चे इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, ताइवान, कोरिया, ब्राज़ील, स्पेन, अमेरिका, इण्डोनेशिया, फ्रांस आदि देशों के रहे हैं। इनके अलावा यहाँ स्टाफ के औसतन 12 सदस्य रहते हैं।

समरहिल स्कूल में छात्रों की संख्या बहुत ज़्यादा कभी नहीं रही और छात्रों को आकर्षित करने व अपने संसाधनों को मज़बूत करने के प्रयास स्कूल को अभी भी करते रहने पड़ते हैं। कई बार ब्रिटिश सरकार ने यह आकलन प्रस्तुत किया कि स्कूल में छात्रों की उपलब्धि का स्तर संतोषजनक नहीं है और स्कूल को बंद करने की कोशिश की। पर समरहिल उन सब बाधाओं का सामना करते हुए 81 सालों से विद्यमान है। यह समाज की समस्याओं का समाधान तो नहीं पेश करता है, पर शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों के तहत् एक मूल्यवान अनुसंधान जारी रखे हुए है।

शिक्षा और समाज के सही स्वरूप की तलाश में संघर्षरत लोगों को ऐसे कई अनुभवों से सीखकर अपने रास्ते चुनने हैं। जिस समय समरहिल स्कूल विकसित

हो रहा था, सोवियत रूस में एक नए समाज की शिक्षा के लिए प्रयोग चल रहे थे। भारत में उस दौर में गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, कृष्णमूर्ति, गीजूभाई ने प्रयोग किए। बच्चों के लालन-पालन और विकास के बारे में जहाँ इन सभी प्रयासों में कुछ मूलभूत समानताएँ थीं, वहीं अन्तर भी थे। बच्चों की निहित अच्छाई और ईमानदारी में विश्वास, बौद्धिक के साथ-साथ भावनात्मक विकास पर ज़ोर, स्वप्रेरणा, स्वतंत्रता, स्वअनुशासन व सामूहिक अनुशासन पर ज़ोर, अपनी रचनात्मकता और ऊर्जा को निखारते हुए कुछ बनने और समाज को योगदान देने पर ज़ोर - इसके पुट सभी के प्रयासों में दिखते हैं। पर अनुशासन के स्वरूप में अंतर है; विचारधाराओं को दिए जाने वाले महत्व में अंतर है; बचपन की व्याख्या में भी अंतर है। ऐसे कई प्रयोगों की विवेचना हमें करनी है। हम यह विश्वास करते हैं कि समरहिल का हिन्दी में प्रकाशन इस विवेचना को आगे बढ़ाएगा। समरहिल स्कूल के साहसी अनुभवों का यह ईमानदार दस्तावेज़ हमें बार-बार अपने बचपन की ओर लौटाएगा और हमारे भावी कदमों को प्रभावित किए बगैर नहीं रहेगा।

एकलव्य समूह

विषयवस्तु

एरिक फ्रॉम का प्राक्कथन *viii*

समरहिल का विचार / 1
बच्चों की परवरिश / 76
सेक्स / 165
धर्म और नैतिकता / 194
बच्चों की समस्याएँ / 217
अभिभावकों की समस्याएँ / 242
सवाल-जवाब / 277

एरिक फ्रॉम का प्राक्कथन

अठारहवीं शताब्दी के दौरान प्रगतिशील विचारकों ने आज़ादी, लोकतंत्र तथा आत्मनिर्णय के विचार उद्घोषित किए और बीसवीं शताब्दी की पूर्वा में ये सभी विचार शिक्षा के क्षेत्र में फलते नज़र आने लगे। आत्मनिर्णय या स्वाधीनता का आधारभूत सिद्धान्त था सत्ता के बदले आज़ादी। बच्चे को दबाव के बिना उसकी जिज्ञासा और स्वतःस्फूर्त आवश्यकताओं को सम्बोधित कर पढ़ाना और सहज ही आसपास की दुनिया में उसकी रुचि जगा देना। इस दृष्टिकोण ने प्रगतिशील शिक्षा की शुरुआत की। यह मानव विकास के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ।

पर इस नई विधि के नतीजे अक्सर निराशाजनक थे। हाल में प्रगतिशील शिक्षा के प्रति विरोध बढ़ता गया है। आज, कई लोग मानने लगे हैं कि यह सिद्धान्त ही त्रुटिपूर्ण है और उसे रद्दी की टोकरी में फेंक देना चाहिए। आज अधिक से अधिक अनुशासन की दिशा में एक मज़बूत आन्दोलन उभरता नज़र आने लगा है। यही नहीं, पब्लिक स्कूलों के शिक्षकों को शारीरिक दण्ड की अनुमति हो, इसका अभियान भी सिर उठा रहा है।

इस प्रतिक्रिया में जो घटक सबसे मज़बूत है, वह शायद सोवियत यूनियन में शिक्षा विधि की सफलता है। वहाँ पुराने सत्तावादी तौर-तरीकों का पुरज़ोर उपयोग किया जाता है। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है, इन तौर-तरीकों के परिणाम हमें भी यही संकेत देते लगते हैं कि बच्चे की आज़ादी को भूलकर अनुशासन की ओर लौटो।

क्या बल प्रयोग के बिना शिक्षा का विचार ही गलत है? विचार गलत न भी हो, तो भी हमारे पास उसकी तुलनात्मक असफलता का क्या स्पष्टीकरण है?

मेरा मानना है कि बच्चे की स्वतंत्रता का विचार गलत नहीं है। पर आज़ादी का विचार लगभग हमेशा ही विकृत किया गया है। बात को साफ-साफ समझने के लिए हमें स्वतंत्रता की प्रकृति को समझना होगा। और यह समझने के लिए हमें प्रत्यक्ष सत्ता और अनाम या अज्ञात सत्ता में अंतर करना होगा। प्रत्यक्ष सत्ता, सीधे और साफ-साफ आरोपित की जाती है। सत्तावान व्यक्ति अपने अधीनस्थ व्यक्ति को साफ कहता है, तुम्हें यह करना ही है। अगर तुम यह नहीं करोगे तो तुम पर कुछ दण्ड लगाए जाएँगे। पर अज्ञात सत्ता यह बात छुपाती है कि दबाव का प्रयोग किया जा रहा है। अज्ञात सत्ता यह ढोंग करती है कि सत्ता है ही नहीं। बल्कि सब

कुछ व्यक्ति की सहमति से किया जा रहा है। पुराने समय का शिक्षक जॉनी से कहता था, तुम्हें यह करना ही है। नहीं करोगे तो मैं सज़ा दूँगा। आज का शिक्षक कहता है, मुझे विश्वास है कि तुम इसे करना पसन्द करोगे। यहाँ बात नहीं मानने की सज़ा, शारीरिक दण्ड नहीं होता बल्कि माँ-बाप के पीड़ित चेहरे होते हैं। और भी बुरी सज़ा होती है बच्चे को यह जताना कि वह अनुकूलित नहीं है, वह शेष लोगों का सा आचरण नहीं कर रहा है। प्रत्यक्ष सत्ता शारीरिक बल का प्रयोग करती थी। पर अज्ञात सत्ता मानसिक परिचालन करती है।

आधुनिक औद्योगिक समाज की संगठनात्मक ज़रूरतों के कारण उन्नीसवीं शताब्दी की प्रत्यक्ष सत्ता, बीसवीं शताब्दी की अज्ञात सत्ता में बदली। पूँजी के केन्द्रीकरण ने विशाल उद्यमों को जन्म दिया जिनकी व्यवस्था पद के क्रम में श्रेणी अफसरशाही के हाथों थी। इनमें कार्मिकों और क्लर्कों के विशाल समूह एक साथ काम करते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक विशाल व्यवस्थित उत्पादन मशीन का हिस्सा होता है। ऐसी मशीन को चलाना तभी सम्भव है, जब सब कुछ सहजता से बिना रुकावट के होता रहे। यहाँ प्रत्येक कार्मिक मशीन का एक पुर्ज़ा भर होता है। ऐसे उत्पादन संगठन में व्यक्ति प्रबन्धित भी होता है और संचालित भी।

उपभोग के क्षेत्र में भी; जहाँ कहने को व्यक्ति को चुनाव की स्वतंत्रता होती है, उसे ठीक इसी तरह प्रबन्धित और संचालित किया जाता है। बात चाहे भोजन, वस्त्र, शराब, सिगरेट, फिल्में, टेलीविज़न कार्यक्रम किसी की भी हो, हर जगह एक सशक्त सुझाव तंत्र सतत् काम करता है। इस सुझाव के दो उद्देश्य होते हैं। पहला उद्देश्य है लगातार व्यक्ति में नए-नए उत्पादों की भूख बढ़ाना। दूसरा, इस भूख को उस दिशा में मोड़ना जो उद्योगों के लिए सर्वाधिक फायदेमन्द हो। मानव एक उपभोक्ता में बदल दिया जाता है। वह ऐसे दुध-मुँहे बच्चे का रूप धारण कर लेता है, जिसकी एकमात्र इच्छा होती है और अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग।

हमारी आर्थिक व्यवस्था को ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना पड़ता है जो उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप हों। ऐसे व्यक्ति जो आसानी से सहयोग करें, ऐसे व्यक्ति जो अधिकाधिक उपभोग करना चाहें। हमारी व्यवस्था को ऐसे लोग चाहिए जिनकी रुचियाँ मानकीकृत हों, जिन्हें आसानी से प्रभावित किया जा सके, जिनकी ज़रूरतों का आसानी से अनुमान लगाया जा सके। हमारी व्यवस्था को ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो स्वयं को आज़ाद और स्वावलम्बी महसूस करते हों, पर फिर भी वह सब करने को तैयार हों जिसकी उनसे उम्मीद की जाती है। ऐसे व्यक्ति, जो सामाजिक मशीनरी में बिना घर्षण के फिट किए जा सकें, जिन्हें बिना दबाव के किसी भी दिशा में मोड़ा जा सके। जिनका एकमात्र लक्ष्य हो सफलता। ऐसा नहीं है कि आज सत्ता विलुप्त हो गई हो या उसकी शक्ति क्षीण हो गई हो। हुआ इतना भर है कि उसका स्वरूप बल प्रयोग करने वाली प्रत्यक्ष सत्ता से बदलकर समझाने

और सुझाव देने वाली अज्ञात सत्ता का हो गया है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक व्यक्ति को अनुकूल बनाने के लिए इस भ्रम को पोषित करना पड़ता है कि सब कुछ उसकी सहमति से हो रहा है। फिर चाहे उसकी सहमति सूक्ष्म संचालन द्वारा उससे क्यों न निकाली गई हो। कह सकते हैं कि यह सहमति उसकी पीठ पीछे, या चेतन मानस के पीछे से ले ली जाती है।

ठीक ऐसी ही चालों का उपयोग प्रगतिशील शिक्षा में होता है। बच्चे को कड़वी दवा की गोली तो निगलनी ही पड़ती है, हाँ उस पर चीनी की परत ज़रूर चढ़ा दी जाती है। माता-पिता तथा शिक्षक समझाइश व गुप्त दबाव द्वारा दी जा रही शिक्षा को ही वास्तविक सत्ताहीन शिक्षा मान लेते हैं। प्रगतिशील शिक्षा दरअसल भ्रष्ट हो चुकी है। उससे जो अपेक्षाएँ थीं वैसी बनने में वह असफल रही है और न ही उसे उस प्रकार विकसित किया जा सका है जैसा किया जाना चाहिए था।

ए. एस. नील की प्रणाली बालक के लालन-पालन का क्रान्तिकारी तरीका है। मेरी राय में उनकी पुस्तक इसलिए बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि वह भयमुक्त शिक्षा के सच्चे सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करती है। सत्ता छिपकर बच्चों को संचालित नहीं करती।

समरहिल किसी सिद्धान्त को प्रतिपादित नहीं करता। बल्कि लगभग चालीस वर्षों के वास्तविक अनुभवों का वर्णन करता है। पुस्तक के लेखक का मानना है कि आज़ादी सच में कारगर है।

नील की प्रणाली में अन्तर्निहित सिद्धान्तों को पुस्तक में सहजता और स्पष्टता से प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में ये सिद्धान्त हैं:

1. नील का बालक की अच्छाई में दृढ़ विश्वास है। वे मानते हैं कि एक औसत बच्चा जन्म से अपंग, कायर और आत्महीन मानव-मशीन नहीं होता। बल्कि उसमें जीवन के प्रति प्रेम, जीवन में रुचि की सम्पूर्ण सम्भावनाएँ होती हैं।

2. शिक्षा का ध्येय या कहें जीवन का ध्येय है प्रसन्नता से काम करना और आनंद को तलाश पाना। नील के अनुसार आनन्द का अर्थ है जीवन में रुचि लेना। यही बात मैं दूसरे शब्दों में यूँ कहना चाहूँगा - जीवन के प्रति महज़ दिमागी प्रतिक्रिया न कर अपने समग्र व्यक्तित्व से जुड़ना।

3. शिक्षा में सिर्फ बौद्धिक विकास पर्याप्त नहीं है। शिक्षा बौद्धिक के साथ भावनात्मक भी हो, यह ज़रूरी है। आधुनिक समाज में बुद्धि और भावना में अन्तर क्रमशः बढ़ता जा रहा है। आज मानव के अनुभव उसकी आन्तरिक भावनाओं से आँखों से देखकर या कानों से सुनकर नहीं होते। वे अनुभव मुख्यतः दिमागी होते हैं। बुद्धि और भावनाओं का यह फासला व्यक्ति में ऐसी खण्डित मानसिकता पैदा करता है जो उसे वैचारिक अनुभव ही पाने देता है।

4. शिक्षा बच्चे की आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली होनी चाहिए। बच्चा परोपकारी नहीं होता। वह वयस्कों-सा परिपक्व प्रेम करने की स्थिति में नहीं पहुँचा होता है। बच्चे से उसकी उम्मीद करना भूल होगी, जिसका वह केवल ढोंग करे। परोपकारिता तब विकसित होती है जब वह बचपन पार कर लेता है।

5. सख्ती से लागू किया गया अनुशासन और दण्ड भय पैदा करता है। और भय, विद्वेष जगाता है। यह विद्वेष चेतन न होकर गुप्त भी हो सकता है, फिर भी वह उसके प्रयासों को, उसकी भावनाओं की प्रामाणिकता को पंगु बना डालता है। बच्चों पर व्यापक अनुशासन लागू करना उसके आत्मिक विकास में बाधक साबित होता है।

6. आज़ादी का अर्थ स्वेच्छाचार नहीं होता। नील जिस सिद्धान्त पर खासा बल देते हैं, वह यह है कि व्यक्ति के प्रति श्रद्धा दो-तरफा होती है। शिक्षक बालक पर बल प्रयोग नहीं करे, न ही बालक को यह अधिकार हो कि वह शिक्षक पर बल प्रयोग करे। उसे अधिकार नहीं है कि वयस्क पर महज़ इसलिए हावी हो क्योंकि वह बच्चा है। न ही वह उन तरीकों से दबाव डाले जिनका प्रयोग बच्चा कर सकता है।

7. इस सिद्धान्त से जुड़ी बात है शिक्षक की वास्तविक निष्कपटता। लेखक कहते हैं कि 40 वर्षों तक समरहिल में काम करने के दौरान उन्होंने किसी बच्चे से झूठ नहीं बोला। जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा उसे विश्वास हो जाएगा कि यह एक दम्भी दावा नहीं है, बल्कि सीधी-साफ सच्चाई का बयान है।

8. अपराधबोध मुख्यतः बच्चे को सत्ता से जोड़ने का काम करता है। स्वतंत्रता की राह में अपराधबोध आड़े आता है। आपराधिक भावनाएँ एक ऐसा दुष्चक्र शुरू करती हैं जो बच्चे को विद्रोह, पश्चाताप, आत्मसमर्पण और एक नए विद्रोह में फँसाती हैं। हमारे समाज के अधिकांश लोग जो अपराध की भावनाएँ झेलते हैं, वह अपराधबोध आत्मिक आवाज़ की प्रतिक्रिया नहीं होती बल्कि मूलतः सत्ता के प्रति खिलाफत और दण्ड का भय होता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह दण्ड शारीरिक हो, स्नेह-प्रेम को हटा लेना हो, या फिर उसे यह जताना हो कि वह अपना नहीं पराया है। सभी आपराधिक भावनाएँ डर पैदा करती हैं, और डर से उपजता है विद्वेष और पाखण्ड।

9. समरहिल किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं देता। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि जिसे हम आधारभूत मानवीय मूल्य कहें, उनसे समरहिल का कोई सरोकार नहीं। नील इस बात को खूबसूरती से समेटते हुए कहते हैं, "लड़ाई, धर्मविज्ञान में विश्वास या उसमें अविश्वास करने वालों की नहीं। यह झगड़ा दरअसल मानवीय आज़ादी में विश्वास करने वालों और मानवीय दमन में आस्था रखने

वालों के बीच है।" लेखक जोड़ते हैं, "कोई दिन ऐसा भी आएगा जब नई पीढ़ी आज के अप्रासंगिक धर्म और मिथकों को नहीं स्वीकारेगी। जब उसका स्थान एक नया धर्म लेगा तो वह इस विचार को नकारेगा कि मानव की सृष्टि पाप से हुई है। लोगों को प्रसन्न रखकर ही वह नया धर्म ईश्वर की स्तुति करेगा।"

नील आज के समाज के आलोचक हैं। वे यह रेखांकित करते हैं कि हम जिस तरह के व्यक्ति को पालते-पोसते हैं वह एक भीड़-मानव है। हम एक विक्षिप्त समाज में जी रहे हैं और हमारे ज़्यादातर धार्मिक रिवाज़ पाखण्ड हैं। ज़ाहिर है कि लेखक एक अन्तर्राष्ट्रवादी हैं और इस विचार में अडिग विश्वास करते हैं कि युद्ध के लिए तैयार रहना मानव जाति का एक बर्बर कुलानुजातिक रोग है।

वास्तव में नील बच्चे को ऐसे शिक्षित करने की कोशिश करते ही नहीं कि बच्चा मौजूदा व्यवस्था में बखूबी फिट हो जाए। बल्कि उनका प्रयास बच्चों को ऐसे पालने-पोसने का है जिससे वे प्रसन्न इन्सान बन पाएँ। वे ऐसे पुरुष बनें जिनके मूल्य अधिक पाने, अधिक उपभोग करने के बदले स्वयं कुछ अधिक बनने का हो। नील यथार्थवादी हैं, वे यह देख सकते हैं कि जिन बच्चों को वे शिक्षित कर रहे हैं वे सम्भवतः दुनियाई अर्थ में अधिक सफल न सिद्ध हों। पर फिर भी उनमें सच्ची निष्कपटता विकसित होगी जो उन्हें बेमेल बनने या भूखे-भिखारी बनने से बचाएगी। लेखक ने समग्र मानवीय विकास और पूर्ण बाज़ारी सफलता के बीच चुनाव किया है। और अपने चयनित लक्ष्य की दिशा में वे बिना समझौते किए, पूरी ईमानदारी के साथ आगे बढ़े।

(1960)

एरिक फ्रॉम : सिगमन्ड फ्रॉयड के विचारों से प्रभावित फ्रॉम ने मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के क्षेत्र में बहुत अध्ययन और काम किया।

1

समरहिल का विचार

एलेक्ज़ैण्डर सदरलैण्ड नील
(1883-1973)